दीदी मनमोहिनी जी

दीदी मनमोहिनी जी ने अपना अलौकिक अनुभव इस प्रकार सुनाया है – ''सिन्ध में एक नामी-गिरामी परिवार में मेरा जन्म हुआ था और जिस परिवार में मेरी शादी हुई वह भी बहुत नामी-गिरामी था। लौकिक में, हमारे परिवार का बाबा के परिवार में आना-जाना होता रहता था। बाबा के प्रति हमारे परिवार में एक तरह का आकर्षण भी था। आप पूछेंगे क्यों ? क्योंकि बाबा भक्ति करने में बहुत प्रसिद्ध थे। कई दिखावे की भक्ति भी करते हैं लेकिन बाबा की भक्ति सच्ची और गहरी थी। भक्ति भावना, दानशीलता, उदारता और परोपकारिता को देख मुझे उनके प्रति आकर्षण होता था तथा लौकिक रिश्ता होने के कारण बाबा से मिलना-जुलना भी होता रहता था। लौकिक माँ की इच्छा थी कि मेरे बच्चों की लेन-देन बाबा के घर में हो लेकिन ऐसा नहीं हुआ, दूसरे घर में हमारा रिश्ता हुआ।

लौकिक जीवन में बहुत अमीर होते हुए भी मैं दुःखी थी इसलिए इधर-उधर सत्संग में ज़्यादा समय गुज़ारती थी। घर में हर प्रकार की सुख-सुविधायें थीं, हर समय दान-पुण्य आदि चलता रहता था। गीता और भागवत के प्रति मेरा बहुत प्यार था। इनको पढ़ने से क्या होगा – यह पता नहीं था लेकिन भागवत में जो गोपियों की कहानी है, वह मुझे बहुत अच्छी लगती थी। रोज़ उसे पढ़ने का मेरा नियम था। मैं अपने अन्दर भी उन गोपियों को देखती थी। मेरा लौकिक नाम भी गोपी ही था। गोपियों के साथ कृष्ण की लीला पढ़कर मेरी आँखों में आँसू आ जाते थे। गोपियाँ मुझे बड़ी प्यारी लगती थीं। मैं सोचती थी कि गोपियाँ कैसे कृष्ण से मिलती होंगी ! इस प्रकार मेरा भक्ति का पार्ट चलता था।''

बाबा के मस्तक पर लाइट का चक्र घूमते हुए देखा

''एक दिन मेरी लौकिक माँ, जिसको यज्ञ में क्वीन मदर कहते थे, बाबा के पास गयी। दूसरे दिन उन्होंने बाबा के पास जाकर मुझे ले आने के लिए कार भेजी। उन दिनों में किसी के पास कार होना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। मैं कार में बैठकर बाबा के पास गयी। उस समय बाबा एक छोटे-से कमरे में गीता हाथ में पकड़ कर सत्संग करा रहे थे। बाबा को कई बार देखा था लेकिन इस बार बाबा के प्रति विशेष आकर्षण हो रहा था। बाबा के पास जाकर बैठी, तो बाबा की और मेरी दृष्टि, एक-दूसरे की तरफ़ थी। मैंने बाबा के मस्तक पर लाइट के चक्र को घूमते हुए देखा। मैं यह भी नहीं कहूँगी कि मैं ध्यान में गयी थी। इन्हीं आँखों से बाबा के मस्तक पर चमकता हुआ लाइट का चक्र देख रही थी। बाबा कुछ सुना रहे थे लेकिन मुझे कुछ समझ में नहीं आया। अन्त में, बाबा ने ॐ की ध्वनि लगायी, मैं उस ध्वनि के प्यार में खो गयी। बाबा की आवाज़ में मन को डुबो देने वाला रस था। अभी तक भी मैं बाबा के मस्तक में उस चक्र को देख रही थी। उस ज्योति को देखते हुए भी मन में यही अनुभूति हो रही थी कि बाबा ही श्रीकृष्ण हैं।

सत्संग पूरा होने के बाद बाबा ने मुझसे पूछा कि सत्संग में क्या कुछ सुना ? मैंने कहा, बाबा, सुना लेकिन मेरे मन में एक प्रश्न उत्पन्न हुआ है। बाबा ने पूछा, क्या ? मैंने कहा, स्त्री को गुरु करने का अधिकार नहीं है ना ? बाबा ने कहा, मैंने तो कहा ही नहीं कि तुम गुरु करो। बात बिल्कुल सही थी, बाबा ने कहा ही नहीं था कि गुरु बनाओ। फिर मैंने कहा, मैं कुछ ज़्यादा जानना चाहती हूँ। बाबा ने कहा, कल ॐ-मंडली में आना। दूसरे दिन गयी तो किसी के मकान में बाबा सत्संग करने आये हुए थे। उस समय ॐ-मंडली नाम नहीं पड़ा था। मैं निर्धारित समय पर गयी और बाबा के सामने जाकर बैठ गयी। उस समय आज जैसे चित्र नहीं थे। बाबा ने काग़ज़ पर पेन्सिल से देवलोक (सूक्ष्मलोक), मृत्युलोक (साकार लोक), ब्रह्मलोक का चित्र बनाया और मुझे समझाया। सुनते समय मुझे बाबा भी कृष्ण जैसे लग रहे थे। बाबा से सुनते-सुनते मुझे दिल और जिगर से यह पक्का निश्चय हो गया कि भागवत में

वर्णित गोपी मैं ही हूँ। उस समय हम श्रीकृष्ण को ही भगवान समझते थे। बाबा को देखते ही श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षण के कारण मुझे नशा चढ़ जाता था कि मैं सच्ची-सच्ची गोपी हूँ। बाबा के साथ मैं होली, दीपावली और दशहरा भी मनाती थी इसलिए मुझे नाज़ है कि मैं नम्बर वन गोपी हूँ।''

दीदी जी के लौकिक परिवार का परिचय

दीदी जी के लौकिक परिवार की पृष्ठभूमि की जानकारी देते हुए दादा चन्द्रहास जी कहते हैं – दीदी का जन्म बहुत अच्छे और बड़े परिवार में हुआ था। उनके दादा जी बहुत धनवान थे और शहर के नामी-गिरामी मुखिया भी थे। बहुत-से लोग उनसे राय-सलाह लेने के लिए आते थे। हैदराबाद में उनकी बहुत बड़ी फर्म थी। आयात-निर्यात (Import-export) का उनका व्यापार बहुत-से देशों में चलता था। हैदराबाद के बाज़ार में बहुत बड़ी कोठी थी और परिवार भी बहुत बड़ा था। उनका नाम था आशाराम। दादा आशाराम जी के तीन बेटे थे। तीनों अपने-अपने परिवार सहित इकट्ठे रहते थे। दीदी, आशाराम जी के बड़े बेटे की बड़ी बेटी थीं। दीदी के बाद एक लड़के का जन्म हुआ एवं उसके बाद एक लड़की का जन्म हुआ, जो यज्ञ में शील दादी के नाम से जानी जाती थीं, वे मुंबई में कोलाबा सेन्टर पर रहती थीं। इनके बाद दीदी का एक छोटा भाई था जिसका नाम मिट्ठू था। इस प्रकार दीदी जी के एक बहन और दो छोटे भाई थे।

दादा आशाराम जी के दूसरे बेटे की तीन पुत्रियाँ थीं। उनमें से सबसे छोटी थीं बृजशान्ता दादी, वे भी मुंबई में रहती थीं। तीसरे बेटे का भी परिवार था लेकिन उसके यहाँ से यज्ञ में कोई नहीं आया। दीदी की जल्दी शादी हुई। ससुराल वाले भी बहुत अमीर थे। बड़ी दादी (प्रकाशमणि) के कज़न ब्रदर (चचेरे भाई) हाथी रामानी के यहाँ दीदी की शादी हुई थी। दादी का घर भी उनके घर के पास ही था। दीदी के ससुराल वालों का भी बहुत बड़ा परिवार था। उनमें से एक था दादा आनन्द किशोर का परिवार। दीदी का पति भी बिजनेसमैन था। वह व्यापारार्थ विदेश आता-जाता था।

पवित्रता के कारण दीदी को एक-दो बार मार खानी पड़ी

जब बाबा ने हैदराबाद में सत्संग शुरू किया, तो सारे शहर में हंगामा मच गया कि दादा के सत्संग में ॐ की ध्वनि करते ही सभी ध्यान में चले जाते हैं और भगवान का दर्शन पाते हैं। यह समाचार सुनकर बहुत-से लोग सत्संग में आने लगे। दीदी की माँ भी एक दिन आयी, फिर दीदी भी आने लगी। दीदी की माँ ने दीदी के दादा (आशाराम) को सत्संग में आने का निमंत्रण दिया। बाबा की पहली शिक्षा तो यही थी कि पवित्र (ब्रह्मचर्य) रहना है जिसे सुनकर दीदी ने कहा, मैं पवित्र रहूँगी। पवित्रता के कारण रोज़ दीदी का, पति से झगड़ा होने लगा। एक-दो बार उसने दीदी को मारा भी। एक बार तो उसने गिलास उठाकर दीदी पर फेंक दिया जिससे दीदी का सिर फट गया।

दीदी, बाबा की ज्ञान-मुरली की मस्तानी थीं। ज्ञान सुनते-सुनते वे मस्त हो जाती थीं। बाबा ने जो भी कहा, उसको तुरन्त धारण कर अमल में लाती थीं। पवित्रता के कारण उनको बहुत सितम सहन करने पड़े। पति के अत्याचारों से तंग आकर, पति का घर त्याग कर दीदी को मायके आना पड़ा। दीदी की माँ का नाम रुकमणि था परन्तु उनको बाबा क्वीन मदर (राजमाता) कहते थे। जब दीदी की माता जी को यह पता पड़ा कि पति मारता है तो उन्होंने दीदी को अपने पास बुला लिया। माँ के पास आने के बाद दीदी, दीदी की माँ, दीदी की बहन (शील दादी), चचेरी बहन (बृजशान्ता दादी) सभी बाबा के पास सत्संग करने जाने लगे। दीदी के दादा आशाराम जी भी जाने लगे। ज्ञान सभी को बहुत अच्छा लगता था।

पति के बन्धन तो छूट गये लेकिन दादा के बन्धन खड़े हो गये

कुछ दिनों के बाद शहर में हलचल मच गयी कि दादा जी, सत्संग में आने वाली माताओं को पवित्र रहने के

लिए कहते हैं। इससे पति-पत्नी के बीच झगड़े होने लगे। समाज वाले दादा आशाराम जी से कहने लगे कि आप कहाँ जाते हो, जिस सत्संग से घर-बार बिगड़ रहे हैं, आप भी वहीं जा रहे हो – ऐसे कहकर आशाराम जी का सत्संग में जाना बन्द करा दिया। कुछ दिनों बाद आशाराम जी, दीदी पर रोक लगाने लगे कि तुम दादा के पास मत जाओ। दीदी को इतनी लगन थी कि वह जाये बिगर रह नहीं सकती थीं। अपने दादा को 'हाँ' कहती थी लेकिन चुपके-चुपके चली जाती थी। आशाराम जी मेरे मौसर (मौसी के पति) थे, मैं भी उनके यहाँ जाया करता था। मैं ज्ञान में भी चलता था इसलिए दीदी मुझे अपने पास बुलाती थी और साथ लेकर सत्संग में जाती थी। जब आशाराम जी को पता पड़ा कि मैं दीदी का साथ दे रहा हूँ तो उन्होंने मुझे अपने घर आने से मना कर दिया लेकिन दीदी को उन्होंने बहुत बन्धन डाले। दीदी पति के बन्धन से तो छूट गयी लेकिन पिहर घर में उन्हें दादा के कड़े बन्धनों का सामना करना पड़ा। एक परिवार में चार लोग सत्संग में जा रहे थे, दीदी, दीदी की माँ, दीदी की बहन, दीदी की चचेरी बहन। आशाराम जी इतने सख्त हो गये कि दीदी को उन्होंने कमरे में बन्द करना आरम्भ कर दिया, वे सोचते थे कि दीदी के कारण ही घर के अन्य सदस्य भी जा रहे हैं। दीदी की एक भाभी थी जिनका नाम कमला था, उनको भी ज्ञान अच्छा लगता था। वे भी दीदी को, सत्संग में छिप-छिपकर जाने में मदद करती थी। बृजशान्ता दादी के पिता भी दीदी पर बहुत बिगड़ गये और अपने पिता आशाराम जी से कहा कि अगर दीदी को ॐ-मंडली में जाना ही है तो हमारे घर से चली जाये, उसके कारण ही हमारे बच्चे बिगड़ रहे हैं। आख़िर दीदी को अपने पिहर घर से भी बाहर निकलना पड़ा।

दीदी मम्मा की राइट हैण्ड थीं

दीदी बाबा के पास आयी और बाबा ने उनको एक फ्लेट दिया जिसमें दीदी, दीदी की माँ क्वीन मदर और शील दादी, तीनों रहने लगीं। वहाँ से ये सभी ॐ-निवास आते-जाते थे। जब पिकेटिंग होने पर, बाबा हैदराबाद से कराची आ गये, तब दीदी भी अपनी माँ और बहन के साथ कराची आ गयीं। कराची में बाबा ने दीदी और उनके परिवार के ठहरने का प्रबन्ध अलग एक मकान में किया। बन्धन वाली जो भी मातायें-कन्यायें आती थीं, बाबा उन सभी को दीदी के साथ रखते थे। दीदी सिलाई का काम उनको सिखाती थीं और कोई शिकायत आती थी तो कहा जाता था कि वे तो अलग रहते हैं, सिलाई करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। मैं भी एक दिन हैदराबाद से भागकर कराची आ गया। दीदी ने मुझे भी अपने पास रख लिया और सिलाई का काम सिखाया। दीदी ने मुझे बहुत प्यार दिया। मुझे अपना छोटा भाई समझकर हर रीति से अलौकिक जीवन में आगे बढ़ने के लिए उमंग-उत्साह भरा। दीदी जिस मकान में रहती थी उसका नाम था 'प्रेम निवास' जो ॐ-निवास के सामने ही था। सिर्फ़ रहना उनका वहाँ था, बाक़ी खाना-पीना, क्लास करना सब ॐ-निवास में ही था। दीदी के प्रति बाबा का बहुत आदर था क्योंकि दीदी बहुत अनुभवी थी। यज्ञ में दीदी मम्मा की राइट हैण्ड थी। भारत का विभाजन होने पर हम सभी आबू आ गये और इकट्ठे रहने लगे। आबू आने के बाद यज्ञ में दीदी की ज़िम्मेवारियाँ बहुत बढ़ गयीं। वे हर तरह से मम्मा की सहयोगी रहीं। उसके बाद की कहानी तो आप सभी जानते ही हैं।

भ्राता जगदीश चन्द्र जी, जो इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय के प्रमुख प्रवक्ता और ईश्वरीय साहित्य के प्रमुख रचनाकार थे, दीदी जी के बारे में इस प्रकार लिखते हैं कि दीदी मनमोहिनी जी का दैहिक जन्म हैदराबाद (सिन्ध) के एक जाने-माने धनाढ्य कुल में हुआ था अतः उन्हें धन से प्राप्त होने वाले सभी सांसारिक सुख उपलब्ध थे किन्तु वे मानसिक रूप से असन्तुष्ट थीं। उसका एक कारण यह था कि उनकी लौकिक माता, युवावस्था में ही पति के देहत्याग के कारण बहुत अशान्त रहती थीं। वे स्वयं अपने अनुभव से भी जानती थीं कि इस संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे सर्वाङ्गीण एवं स्थायी सुख तथा शान्ति प्राप्त हो।

गीता और भागवत के प्रति विशेष प्रेम

दीदी मनमोहिनी जी को बाल्यावस्था से ही सत्संग में रुचि तथा गीता से विशेष प्रेम था। वे श्रीमद्भागवत भी पढ़ा और सुना करती थीं। भागवत में गोपियों के प्रसंग में यह पढ़कर कि वे भगवान के प्रेम में अपनी सुध-बुध खो बैठती थीं। दीदी के मन में यह भाव उत्पन्न होता था कि मेरे लौकिक पिता ने नाम तो मेरा गोपी रखा है परन्तु काश ! श्रीमद्भागवत में जिन गोपियों का वर्णन है, मैं भी उनमें से एक होती ! श्रीमद्भगवद्गीता की जो प्रति वे पढ़ा करती थीं उसमें गीता के ''महात्म्य वर्णन'' में लिखा था कि प्राचीन काल में अमुक व्यक्ति जब गीता सुनाया करते थे तो उनके सुनाने के स्थान के द्वार के सामने से गुज़रता हुआ कोई भी व्यक्ति वहाँ रुके बिना नहीं रह सकता था। हर पथिक एक चुम्बक के आकर्षण की न्याई आध्यात्मिक आकर्षण से खिंचा हुआ वहाँ खड़ा हो जाता; वह आवश्यक काम होने पर भी उस गीता सुनने के चाव को न मिटा सकता। इस महात्म्य को पढ़कर दीदी जी के मन में विचार आता था कि क्या मेरे जीवनकाल में मुझे कोई ऐसा गीता सुनाने वाला मिलेगा ? उनकी ये कामनायें और भावनायें शुभ और शीलयुक्त थीं और आख़िर उनके पूर्ण होने का समय आ गया।

जिस सच्चे गीता-ज्ञानदाता की उन्हें खोज थी, वह उन्हें मिल गया

उनकी लौकिक माता जी को किसी ने बताया कि दादा लेखराज प्रतिदिन अपने निवास स्थान पर ऐसी प्रभावशाली एवं मधुर रीति से गीता सुनाते हैं कि बस, मन उसी में रम जाता है और जीवन-विधि अथवा संस्कारों में परिवर्तन के शुभ लक्षण प्रगट होने लगते हैं। दीदी जी की लौकिक माता वहाँ ज्ञान सुनने गयी। पति के देहान्त के कारण उनके मन में वैराग्य तो था ही, अतः अब उन्हें ज्ञान की सुगंधि, प्रभु-स्मृति का आधार, एक उच्च लक्ष्य के लिए पुरुषार्थ करने की राह तथा उससे होने वाला हर्ष एवं आनन्द भी प्राप्त हुआ। इसके बाद, शीघ्र ही दीदी जी भी, जिनका लौकिक नाम गोपी था, गीताज्ञान की प्यास और प्रभु-मिलन की आश लिये वहाँ गयीं। वहाँ उन्होंने देखा कि दादा लेखराज, जिनका बाद में दिव्य नाम, 'ब्रह्मा बाबा' अथवा 'प्रजापिता ब्रह्मा' प्रसिद्ध हुआ, के मुख-मंडल से पवित्रता का तेज और रूहानियत से प्राप्त होने वाली शान्ति की कान्ति तथा दिव्यता की चाँदनी बरस रही थी। उनकी वाणी में एक अद्वितीय मिठास, ओज और रस था जिससे सुनने वालों के मन को जहाँ शान्ति मिलती थी, वहीं उनमें एक क्रान्ति भी आती थी। बाबा की वाणी सुनने वाले पर ऐसा असर पड़ता था कि जो मनोविकार पहले उसे अपनी बेड़ियों में जकड़े हुए थे, वह उन्हें तोड़ फेंकने के लिए केवल कृत संकल्प ही नहीं होता था बल्कि ज्ञान और योग की हथौड़ी और छेनी से चूर-चूर कर देता था। दीदी जी भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सकीं। उन्हें ऐसा लगा कि जिस सच्चे गीता-ज्ञानदाता की उन्हें खोज थी, अब वह उन्हें मिल गया है। अतः बाबा ने अपने प्रवचनों में, जिन्हें अलौकिक भाषा में 'मुरली' कहा जाता है, पूर्ण पवित्रता का व्रत लेने के लिए जो घोषणा की, उसके उत्तर में, दीदी जी ने अन्य अनेकों की तरह इस महान् व्रत को सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने यह मन में ठान लिया कि ब्रह्मचर्य व्रत के पालन के लिए वे सारे संसार का सामना करने के लिए, सिर पर पहाड़ ढह जाने की तरह कष्टों का और सब प्रकार की कठिनाइयों का सामना करेंगी। यहाँ तक कि यदि उनका शरीर भी चला जाये तो वे उसकी भी बलि देंगी परन्तु वे इस व्रत से नहीं टलेंगी, नहीं टलेंगी।

संघर्ष और संग्राम का सामना

दीदी के पवित्रता के महाव्रत के कारण उनका कड़ा विरोध हुआ। उनके निकटतम सम्बन्धियों ने इस सत्संग एवं संगठन का हर प्रकार से कड़ा विरोध भी किया और दीदी जी पर कई प्रकार से बन्धन लगाये गये परन्तु यह उनकी वीरता, उनके संकल्प की दृढ़ता, उनके निश्चय की अचलता और उनके पुरुषार्थ की तीव्रता का द्योतक है कि आज से लगभग 70 वर्ष पहले के ज़माने में, जब हिन्दू समाज में नारी अत्यन्त अबला स्थिति में होती थी, तब भी एक

ऊँचे आदर्श को सामने रखकर उन्होंने सब विरोध सहन किये परन्तु प्रभु-प्रेम से और पवित्रता के नियम से वे एक पल भी पीछे नहीं हटीं। हम भारत देश की वीराङ्गनाओं की वीर-गाथायें पढ़ते हैं और झाँसी की रानी जैसी सेनानियों के निर्भीक संग्राम के ऐतिहासिक छन्दबद्ध उल्लेख भी पढ़ते हैं परन्तु दीदी जी के आध्यात्मिक संग्राम की गाथा वीरता के दृष्टिकोण से किसी से भी कम नहीं है।

ईश्वरीय विश्व विद्यालय में प्रारम्भ से ही एक मुख्य सेवाधारी

सन् 1937 में जब बाबा ने इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय की स्थापना की और उसके लिए कन्याओं-माताओं का एक ट्रस्ट बनाया और अपनी सारी चल एवं अचल सम्पत्ति उन कन्याओं-माताओं को समर्पित की, तब दीदी मनमोहिनी जी भी उस ट्रस्ट की एक विशेष सदस्या थीं। तब से ही बाबा ने उन्हें कन्याओं-माताओं के विभाग से सम्बन्धित अनेक कार्यों के लिए ज़िम्मेवार ठहराया था और वे यज्ञमाता सरस्वती जी की विशेष परामर्शक भी नियुक्त की गयी थीं क्योंकि उनमें तदानुकूल प्रतिभा थी।

प्रशासन अभियन्ता

देश-विभाजन के बाद, सन् 1951 में इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय को सिन्ध से स्थानान्तरित करने के लिए व्यवस्था करनी थी, तब बाबा ने दीदी जी को ही इस कार्य के लिए भेजा था। दीदी जी ने ही पूछताछ करते-करते इसके लिए माउण्ट आबू को चुना था।

ज्ञानमूर्ति, गुणमूर्ति, योगमूर्ति और वात्सल्यमूर्ति

इतना ही नहीं, दीदी में अनेकानेक गुण थे। सबसे पहली बात तो यह है कि वे एक नियमित विद्यार्थी थीं। सन् 1937 से लेकर सन् 1983 की वेला तक शायद ही कभी वे बाबा की ज्ञान-मुरली के श्रवण अथवा संगठित ज्ञान-अध्ययन (क्लास) में अनुपस्थित हुई होंगी। सभी ने उन्हें नित्य प्रातः नोटबुक व पैन का, क्लास में प्रयोग करते हुए देखा था। वे सुनते समय कुछ ज्ञान-बिन्दुओं को लिख डालतीं और बाद में दिनभर में मिलने वाले ज्ञान-अभिलाषियों को सुनाती रहतीं। इस प्रकार 72 वर्ष की आयु में भी वे एक नित्य नियमित विद्यार्थी थीं। जितना ही वे ज्ञानोपार्जन में तत्पर थीं, उतना ही वे योगाभ्यास में भी तीव्र वेगी थीं। वे नित्य प्रातः स्नान कर चार बजे सामूहिक योग में न केवल उपस्थित होतीं बल्कि अधिकतर मौन अभ्यास में सबके सम्मुख योगमूर्ति के रूप में योग सचेतक होतीं।

संस्कार परिवर्तन की सेवा में दक्ष

इसके अतिरिक्त वे एक स्नेहमयी आध्यात्मिक वरिष्ठ शिक्षिका भी थीं। दूसरों को ज्ञान, गुण और योग के मार्ग पर लाने का उनका तरीक़ा निराला था। वे प्रेम के प्रभाव से सम्पर्क में आने वालों के जीवन में सहज परिवर्तन लाने में दक्ष थीं। कोई उनसे मिलने आता, वे ईश्वरीय विश्व विद्यायल की ओर से छपी एक डायरी – जिसमें ज्ञान और योग से सम्बन्धित कुछ चित्र भी होते और हर पृष्ठ पर कोई महावाक्य भी – उन्हें भेंट के रूप में देतीं। जब वह ले लेता, तब उसे कहतीं– ''इसका कोई भी पृष्ठ खोलिये''। वह एक बच्चे की न्याई, माँ के जैसा दुलार पाकर, हँसता-मुस्कराता डायरी का कोई पन्ना खोल देता। तब वे कहतीं – ''पढ़ो, इसमें क्या लिखा है''। वह उसे झूमते-झूमते प्रेम-निमग्न होकर पढ़ लेता। तब दीदी कहतीं – ''यह है तुम्हारे लिए ग्रंथ साहब का वचन। ठीक है ?'' वह उत्तर देता, ''जी हाँ, यह तो बहुत अच्छा है। यह महावाक्य तो मेरे लिए है; यह तो अच्छी डायरी है।'' दीदी जी प्रत्युत्तर में कहतीं – ''अच्छी लगती है ना; इसे धारण करना। यह शिव बाबा की तरफ़ से आपके लिए सौग़ात है। प्रतिदिन एक पन्ना खोल लेना और उस शिक्षा को धारण करने का पुरुषार्थ करना और फिर रात्रि को इसमें अपनी अवस्था का चार्ट लिखना; फिर देखना, जीवन में कितना परिवर्तन आता है। सच कहती हूँ, बहुत आनन्द आयेगा क्योंकि ये

ईश्वरीय महावाक्य हैं।'' इस प्रकार उनकी सौग़ात जीवन को लोहे से सोना बना देती और वह भी सुगंधित। गोया वे प्रेम और ईश्वरीय नियम की ओर मनुष्य का जीवन मोड़ देती। वास्तव में देखा जाय तो दूसरों पर उनके कहने का प्रभाव इसलिए पड़ता था क्योंकि वे पहले स्वयं उसे अपने जीवन में लाती थीं।

परखने की शक्तिशाली शक्ति

दीदी जी में किसी व्यक्ति को परखने की शक्ति बड़ी शक्तिशाली थी। जैसे, धन्वन्तरी (वैद्य), व्यक्ति की नब्ज से उसके रोग को जान लेता था, वैसे ही सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को दीदी जी चेहरे, हाव-भाव अथवा अल्प वार्ता से तुरन्त ही जानकर उसकी आध्यात्मिक समस्या का निदान कर देती थीं और उसे ठीक हल सुझाती थीं। अपनी इस विशेषता के कारण उन्होंने सैकड़ों, हज़ारों व्यक्तियों को पवित्रता एवं योग के मार्ग पर मार्गदर्शन दिया, आगे बढ़ाया, उनका काया पलट किया और उन्हें ऐसा प्रेरित किया कि अनेकानेक कन्याओं एवं माताओं ने अपना जीवन ईश्वरीय सेवार्थ अथवा लोक-कल्याणार्थ समर्पित कर दिया।

एक कुशल पत्र-लेखिका

वे एक कुशल पत्र-लेखिका भी थीं। संक्षेप में ही पत्र एवं पत्रोत्तर द्वारा 'सोये हुओं' को 'जगा' देतीं अथवा माया से घायल हुए मन को राहत देकर पुनरुज्जीवन (Rejuvenation) देने का महान् कार्य करतीं।

अथक सेवाधारी

वे प्रारम्भ से ही कर्मठ थीं, उन्होंने इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय में अथक होकर सेवा की और अपना तन-मन-धन पूर्ण रूपेण जन-जागृति में लगा दिया। वृद्धावस्था में भी उन्होंने ईश्वरीय सेवार्थ आसाम से आबू तक, काश्मीर से कन्याकुमारी तक और कोलकाता से कच्छ तक देश का भ्रमण किया। इतना ही नहीं, विदेश में भी वे इस श्रेष्ठ कर्त्तव्य के लिए गयीं। अपनी 72 वर्ष की आयु में भी वे मधुबन में पधारे हुए हज़ारों आगन्तुकों को सुख-सुविधा देने तथा ज्ञान की गहराई में ले जाने और मातृवत् वात्सल्य से सींचने में दिन-रात लगी रहतीं।

मन की सच्चाई-सफ़ाई तथा अमृतवेले याद की यात्रा पर ज़ोर

दीदी जी प्रारम्भ से ही बाह्य स्वच्छता और मन की सफ़ाई-सच्चाई तथा स्वावलम्बी जीवन पर विशेष बल देती थीं। वे ईश्वरीय मार्ग पर सद्गुरु परमात्मा शिव की शिक्षाओं के प्रति फ़रमानबरदार और वफ़ादार बने रहने के लिए ही हमेशा सीख देती थीं। नित्य ब्रह्ममुहूर्त (अमृतवेले) उठकर ईश्वरीय याद रूपी यात्रा करने की ताकीद करती थीं। इस प्रकार नियम पूर्वक दिनचर्या का पालन करने के लिए वे विशेष ध्यान दिलातीं।

अतिरिक्त मुख्य प्रशासिका का कर्त्तव्य कर सेवाकेन्द्रों में वृद्धि

अपनी कुशाग्र बुद्धि, व्यक्तियों की परख, प्रेम, मर्यादा पालन, नियमित विद्यार्थी जीवन तथा अथक सेवा के कारण वे एक कुशल प्रशासिका भी थीं। इसलिए सन् 1951-52 से लेकर (जब से ईश्वरीय सेवा प्रारम्भ हुई) सन् 1961 तक वे कण्ट्रोलर अथवा प्रशासन-अभियन्ता एवं नियंत्रक नियुक्त थीं और जनवरी सन् 1969 में प्रजापिता ब्रह्मा के अव्यक्त होने के बाद इसकी मुख्य प्रशासिका दादी प्रकाशमणि जी के साथ अतिरिक्त प्रशासिका (Additional Administrative Head) के तौर पर सेवारत थीं। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि 14 वर्षों तक दादी और दीदी दोनों ने मिलकर इस प्रकार प्रशासन कार्य किया कि कभी उनमें मन-मुटाव नहीं हुआ, न कभी उन्होंने एक-दूसरे की आलोचना की। वे कहा भी करतीं कि हम दोनों के शरीर अलग-अलग हैं परन्तु आत्मा एक है। उनके इस मंतव्य और घनिष्ठ स्नेह को देखकर लोग दंग रह जाते, इन दोनों के कुशल प्रशासन में, परमपिता परमात्मा शिव के

प्रशिक्षण एवं संरक्षण में ईश्वरीय विश्व विद्यालय ने दिन दुगुनी और रात चौगुनी उन्नति की जिसके फलस्वरूप, सन् 1983 से पहले ही इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय के विश्वभर में लगभग 1150 सेवाकेन्द्र और उपसेवाकेन्द्र थे।

दीदी जी कुछ वर्षों से ईश्वरीय याद रूपी यात्रा की रफ़्तार तेज़ करने के लिए कहती थीं और अपने हर प्रवचन में यह ज़रूर जताती थीं कि 'अब घर (परमधाम) जाना है'। इसलिए वे पुरानी बातों को भलूकर हल्का होने, दूसरों के अवगुण न देख, गुण देखने और नित्य निरन्तर श्रीमत के अनुसार चलने की बात ज़रूर कहती थीं।

अपने देहत्याग से कुछ समय पहले जब वे थोड़ी अस्वस्थ थीं तो शिव बाबा ने कहा था कि वे 'पलंग पर नहीं बल्कि प्लैनिंग **(Planning)** में हैं और भोगना में नहीं बल्कि योजना में हैं।' शिव बाबा इससे अधिक और स्पष्ट बता ही कैसे सकते थे ? शिव बाबा ने यह भी बताया है कि अब जो सतयुगी पवित्र योगबल वाली सृष्टि की नींव पड़ेगी, उसमें वे प्राथमिक पार्ट अदा करेंगी। अतः यद्यपि इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय के हरेक विद्यार्थी किंवा बहन और भाई का उनसे अमिट स्नेह था और है, फिर भी उन्होंने दीदी जी के अनुपम आध्यात्मिक उत्कर्ष को देखकर और उनके सराहनीय उज्ज्वल भविष्य को जानकर देहत्याग के इस वृत्तान्त को, शोक का अवसर नहीं माना बल्कि योग का अवसर मानते हुए पुरुषार्थ को और तीव्र करने की प्रेरणा ली।

प्रशासनिक कुशलता

दीदी जी के जीवन में अनेक दिव्यगुण अपने चरम उत्कर्ष पर थे। वे बहत्तर वर्ष की आयु में भी आश्चर्य-चकित कर देने वाली स्फूर्ति और चेतना के साथ काम करती थीं। मधुबन में देश के कोने-कोने से तथा विदेशों से, हज़ारों व्यक्ति आते थे तो उनका कार्य-उत्तरदायित्व इतना बढ़ जाता था कि एक अच्छे युवक या युवती के लिए भी संभालना कठिन था परन्तु उन्होंने एक तो सारी व्यवस्था को दादी जी के साथ मिलकर ऐसा बना रखा था कि कार्य सुचारू रूप से, झंझट और झड़प के बिना चलता रहता था और दूसरे वे स्वयं कार्य-प्रवाह से परिचित एवं सूचित रहती थीं तथा ध्यान देती थीं।

प्रातः ही वे सारे मधुबन का एक बार भ्रमण कर लेती थीं और भण्डारे आदि-आदि में, जहाँ-कहीं भी उनके परामर्श की आवश्यकता हो, वे राय दे आती थीं। उनकी कार्य लेने की विधि भी ऐसी थी कि सभी उनसे सन्तुष्ट रहते थे। वे उनकी कठिनाइयों को भाँप कर उन्हें वाञ्छित हल देती थीं और उनमें कठिनाइयों को पार करने के लिए प्रेरणा भरती थीं। यही कारण है कि मधुबन में जो भी वरिष्ठ सरकारी अधिकारी आते या बड़े उद्योगों के व्यवस्थापक आते, वे दीदी जी तथा दादी जी दोनों से मिलते समय यह अवश्य कहते कि यहाँ की व्यवस्था देखकर उन्हें बहुत अच्छा लगा है। न कोई कोलाहल, न आहट, न तनाव, न कार्य का ठहराव। शान्ति, परस्पर प्रेम तथा सेवाभाव से सुचारू कार्य देखकर सभी कहते थे कि प्रशासन (Administration) सीखना हो तो इनसे सीखना चाहिए। फ़रवरी, 1983 में मधुबन में बड़ा सम्मेलन हुआ, तब दादी प्रकाशमणि जी और दीदी मनमोहिनी जी के संरक्षण में तीन हज़ार व्यक्तियों के ठहरने, भोजन करने तथा सब प्रकार की सहूलियतें मिलने का और साथ-साथ सम्मेलन तथा योगादि का कार्य ऐसा शान्तिपूर्ण चला कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लोगों ने भी इसकी प्रशंसा की। इसी प्रकार, इतने बड़े ॐ-शान्ति भवन के इतने अल्पकाल में निर्माण होने की बात भी सभी के लिए एक मधुर आश्चर्य बन गया। वास्तव में, यह दोनों के मधुर व्यक्तित्व एवं प्रशासन-कुशलता का प्रभाव ही था कि सभी ने तन-मन-धन से सहयोग देकर इतने बड़े कार्य को सहज ही सफलता से पूरा कर लिया और वह भी योगयुक्त अवस्था एवं शान्ति से।

त्यागमय जीवन

दीदी जी यद्यपि एक बहुत ही धनवान घराने में पैदा हुई थीं तथापि यज्ञ में उनकी वेष-भूषा, खान-पान तथा रहन-सहन अन्य सभी की तरह अत्यन्त सादा और साधारण था। उन्होंने कभी भी अपने लौकिक कुल के धन-धान्य

के बारे में गर्व नहीं किया। उन्होंने अपने लौकिक जीवन के सुखों को कभी भी याद नहीं किया। इस प्रकार, वे सादगी और त्याग की मूर्ति थीं। उनके पास जो चीज़ें होतीं, वे दूसरों को ही सौग़ात देकर प्रभु-प्रेम में बाँधतीं। उन वस्तुओं को वे अपने लिए प्रयोग नहीं करती थीं।

नम्रचित्त

दीदी मनमोहिनी जी, दादी प्रकाशमणि जी के साथ मिलकर एक बहुत बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का कार्य-संचालन करती थीं। अतः उत्तरदायित्व के साथ उन्हें काफ़ी अधिकार भी प्राप्त थे। परन्तु उन्होंने कभी भी किसी से अधिकार या सत्ता के मद (अहंकार) में नहीं बोला। बल्कि यदि कभी किसी ने मार्यादानुसार व्यवहार नहीं किया, तब भी उन्होंने उसे मातृवत् प्रेम ही दिया ताकि वह ईश्वरीय ज्ञान के मार्ग से पीछे न हट जाय। यदि कभी कोई किसी कारण से रुष्ट भी हो गया तो भी उन्होंने स्वयं झुककर उसे स्नेह और सौहार्द्र से सींचा ताकि शिव बाबा के साथ उस आत्मा का बुद्धियोग बना रहे और वह देहधारी आत्माओं से रूठकर कहीं योगमार्ग से विचलित न हो जाये। उन्होंने कभी यह हठ नहीं किया कि ''ग़लती अमुक व्यक्ति की ही है, अथवा दोष उसी का ही है और इसलिए मैं उससे क्यों बात करूँ ?'' बल्कि स्वयं दीदी जी ने ही उसके मन को शीतल करने के लिए कहा कि ''भाई, मन में कोई बात हो तो निकाल दो; हम सभी एक मार्ग के राही हैं। दैवी परिवार में आत्मिक सम्बन्धी हैं और हमारे मन में आपके लिए शुभ भाव ही है।'' इस प्रसंग में यह कहना उचित होगा कि दीदी जी को बच्चों का यह गीत – ''हम हैं आत्मा, तुम हो आत्मा, आपस में भाई-भाई, बाबा कहते पढ़ो पढ़ाई; नहीं किसी से लड़ो लड़ाई'', अच्छा लगता था।

स्नेहमय व्यक्तित्व

दीदी जी की यह एक विशेषता थी कि वे सम्पर्क में आये व्यक्ति को स्नेह से अपना बना लेती थीं। वे किसी को माँ-जैसा प्यार देकर या किसी को उसकी समस्या का हल देकर स्नेह के सूत्र में बाँध कर, उससे कोई-न-कोई बुराई छुड़वा देतीं। जो बात वह व्यक्ति अन्य किसी से नहीं मानता था, दीदी जी उसे सहज ही मनवा देतीं। इस प्रकार, उनके व्यक्तित्व में एक चुम्बकीय आकर्षण था। उनसे बात करने में किसी को भी भय महसूस नहीं होता था बल्कि उनके स्नेह के स्पन्दनों से, उनकी ओर खिंच जाता था और दीदी जी उसे आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ा देती थीं। उनके सम्पर्क में आते रहने वाला व्यक्ति प्रायः ज्ञान-विमुख नहीं होता था। जिस डॉक्टर (डॉ. भगवती) ने दीदी जी का ऑपरेशन किया, स्वयं वह दीदी जी को माँ मानने लगा था।

यद्यपि दीदी जी का स्नेहशील व्यक्तित्व था परन्तु वे अपनी स्थिति को उपराम भी उतना ही बनाये रखती थीं। जब वे किसी को कुछ टोली (प्रसाद) खाने के लिए देती थीं तो पूछती थीं कि ''शिव बाबा की याद में रहकर खाया है या नहीं ?''

विनोद-प्रिय

दीदी जी केवल तपस्यामूर्त ही नहीं, बल्कि विनोद-प्रिय भी थीं। वे चुटकले सुनती और सुनाती थीं परन्तु वे चुटकले भी शालीन और अलौकिकता की ओर ले जाने वाले होते थे। वे शुष्क स्वभाव की नहीं थीं बल्कि इतनी आयु होने पर भी बाल-स्वभाव की तरह सरल और हास्य-प्रिय थीं।

निद्राजीत

जो लोग भी दीदी जी के सम्पर्क में आये हैं, वे जानते हैं कि दीदी जी सोती बहुत कम थीं। वे रात्रि को निद्रा त्याग कर भी कुछ समय व्यक्तिगत रूप से योगाभ्यास करती थीं। वे प्रातः कभी दो बजे भी उठ जातीं, अव्यक्त बापदादा के प्रोग्राम में काफ़ी समय बैठी रहतीं और वैसे भी ''ईश्वरीय याद रूपी यात्रा'' पर विशेष ध्यान देतीं। उस

तपस्या का ही यह फल है कि वे ज्ञान एवं योग की दौड़ में विन (Win;विजय) और वन (One;प्रथम) की सूची में आ गयीं।

आत्म-निश्चय की अभ्यासी

वे सभी को आत्मिक स्थिति और ईश्वरीय स्मृति के अभ्यास की टेव डालती थीं। यदि कोई व्यक्ति बीमार होता और लोग उससे, बीमारी की बार-बार अधिक चर्चा करते तो वे उन्हें कहतीं कि इसे देह की अधिक याद न दिलाओ। वे उस व्यक्ति को भी कहतीं कि ''शिव बाबा की स्मृति में रहोगे तो तन के कष्ट मिट जायेंगे।'' स्वयं भी जब वे अस्पताल में थीं तो ईश्वरीय स्मृति में ही थीं और डॉक्टर को कहती थीं कि तन को कुछ होगा परन्तु मन ठीक है। अस्पताल में नर्सों को उनसे विशेष स्नेह हो गया था। दीदी जी ने उन्हें भी शिव बाबा का संक्षिप्त परिचय दिया था। जो कोई भी आता था, दीदी जी उसे ''ओम् शान्ति ! शिव बाबा याद है ?'' – यह कहा करती थीं। अस्पताल के कर्मचारी भी कहते थे कि अब यह अस्पताल भी सत्संग भवन अथवा आश्रम बन गया है। दीदी जी अपने कर्म से वातावरण को आध्यात्मिक बना देती थीं। उनकी योगदृष्टि बहुत बलशाली और शिक्षा प्रभावशाली थी।

अलौकिक माँ

दादी निर्मलशान्ता जी, दीदी मनमोहिनी जी के बारे में अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त करती हैं – मैं तो बाबा की नटखट बच्ची थी। दीदी ने ही मुझे नया जीवन दिया। दीदी ने ही मेरे ऊपर मेहनत की। मेहनत करके मुझे लौकिक से अलौकिक में ट्रान्सफर किया। दीदी मुझे कहती थी कि तुम हमारे गुरु की बेटी, गुरुपुत्री हो, इसलिए तुम मुझे प्यारी लगती हो। मैं कहती थी कि दीदी, आप मेरी गुरु हो, इसलिए आप मुझे प्यारी लगती हो। मैं तो उनको अपनी अलौकिक माँ मानती हूँ क्योंकि जो ज्ञान देने के निमित्त बनती है, उसको अलौकिक माँ ही कहा जाता है ना !

बाबा की सपूत बच्ची

दादी चन्द्रमणि जी ने दीदी जी के प्रति श्रद्धासुमन इस प्रकार अर्पित किये हैं कि दीदी में एक विशेष गुण था कि वे गुणग्राहक थीं। सबसे गुणग्रहण करती थीं। वे सबसे यही कहती थीं कि ''यह आत्मा बाबा की बनी है अर्थात् इसमें कोई-न-कोई विशेषता ज़रूर है, तब तो बाबा ने इस आत्मा को किसी कोने से ले आकर अपना बच्चा बनाया।'' ऐसे वे हमेशा हरेक की विशेषता देखती थीं। उन्होंने अन्त तक, अपने को बाबा की स्टूडेन्ट समझकर, स्टूडेन्ट-लाइफ जीया। उनमें हैंडलिंग पॉवर बहुत अच्छी थी। वे बाबा की आज्ञाकारी, वफ़ादार, फरमानवरदार, ईमानदार, सपूत बच्ची थीं। एक बार मुझे बुखार आया था, मैं रेस्ट में थी। किसी ने जाकर दीदी को समाचार दिया। दीदी मेरे पास आयीं और पूछा, चन्द्रमणि, कैसी हो ? मैंने कहा, दीदी मुझे थोड़ा-सा बुख़ार आया है। तब दीदी ने कहा, तुमने कैसे कहा कि मुझे बुखार आया है ? बुख़ार तो शरीर को आया है, तुमको नहीं। ऐसे कहो कि शरीर को बुख़ार आया हुआ है। हमको कुछ नहीं होता है, हमको तो घर चलना है। इस प्रकार दीदी साधारण बात को भी ज्ञानयुक्त बोलने के लिए कहती थीं। दीदी में उपराम वृत्ति बहुत थी। सदैव मैंने दीदी को उपराम और अव्यक्त स्थिति में रहते हुए देखा। जब भी थोड़ा समय मिलता था तो कहती थीं कि आओ, हम रूह-रिहान करें। वे ज्ञान की इतनी गहराई में जाती थीं कि बात मत पूछो। दीदी ब्राह्मण परिवार की और बापदादा की बहुत स्नेही और मीठी आत्मा थीं।

यज्ञ में सर्वोच्च स्थान

जर्मनी की सुदेश बहन दीदी जी के बारे में अपना अनुभव सुनाती हैं कि दीदी मेरी अलौकिक मदर (माता) थी। दीदी जी ने मुझे ज्ञान का जन्म देकर अलौकिक पालना की। जैसे स्थूल पढ़ाई, माँ अपनी बच्ची को घर में

पढ़ाती है, वैसे ही दीदी जी ने भी, बाबा के साथ प्रीत कैसे रखनी चाहिए – यह मुझे सिखाया। कैसे गुप्त रूप से योग करना चाहिए, यह भी सिखाया। अमृतवेले दो बजे उठकर योग का अभ्यास कैसे किया जाता है, यह भी सिखाया। उनके हर चरित्र से, देखने वालों को बापदादा का चित्र दिखायी पड़ता था।

एक माता होने के कारण, यज्ञ में उनका पार्ट बहुत गणनीय था। वे माताओं, कन्याओं और भाइयों को यज्ञ में समर्पण कराने की कला में महान प्रवीण थीं। यज्ञ के आदि से ही, यज्ञ की स्थापना के कार्य में तथा यज्ञ को संभालने के कार्य में दीदी जी, बाबा के क़दम के साथ क़दम मिलाकर चलती रहीं। दीदी जी निर्मानचित्त बहुत थीं, साथ-साथ उनमें निर्माण करने की कला भी बहुत अच्छी थी। यज्ञ में दीदी जी का स्थान बहुत ऊँचा था। जितना वे ऊँचे स्थान पर थीं उतना ही विनम्र भी थीं। मालिक भी थी और बालक भी। जब उन्होंने, अन्त में, लंदन का दौरा किया उस समय हम सबने जाना कि वे बापदादा की सारी शिक्षाओं की साकार धारणामूर्ति थीं। उनमें यह विशेषता विशेष रूप में थी कि पहले ख़ुद धारणा करती थीं, बाद में दूसरों को कराती थीं। उनकी शिक्षा ऐसी होती थी कि सामने वाले को लगता था, ईश्वरीय नियमों का अनुसरण करना बहुत सरल और सहज है। दीदी में निवारण एवं निर्णय करने की शक्ति बहुत थी। भगवान के साथ अलौकिक सर्व सम्बन्धों को निभाने में वे प्रवीण थीं। मालिक बाबा के साथ बालक बन करके रहना और उसको अपना बालक बनाना – यह दीदी जी की विशेष ख़ूबी थी। बाबा के साथ उनकी मित्रता अलौकिक और अनोखी थी।